|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||



## || श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

**अध्याय 3: कर्मयोग**

1/3 (श्लोक 1-10), शनिवार, 22 फ़रवरी 2025

**विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर**

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/7F9A_Y5p-rY

# कर्म ही पूजा है

देशभक्ति गीत, भजन, हनुमान चालीसा पाठ, दीप प्रज्वलन, गुरु-वन्दना एवम् आरम्भिक प्रार्थना के साथ सत्र का आरम्भ हुआ। परमपूज्य वेदव्यास जी महाराज द्वारा हमें श्रीमद्भगवद्गीता रूपी अनमोल रत्न प्राप्त हुआ है। इसकी रचना इतनी सुन्दर है कि हम जितनी बार इसका अध्ययन करते हैं, हर बार कुछ नया प्राप्त होता है। अनन्त ज्ञान इसमें समाया हुआ है। इसलिए श्लोकों को बार-बार पढ़ने, उनके मनन-चिन्तन करने तथा व्यवहार में, आचरण में लाने का प्रयास करना है। इसे पढ़ने से हमारा अभ्यास और अधिक होता है। अर्थ समझना और उसे जीवन में लाने का प्रयास करना है।

**गीता पढ़ें, पढ़ायें और जीवन में लाएँ।**

यह ध्येय वाक्य, यह महामन्त्र हमें स्वामी जी ने दिया है। इसी श्रृङ्खला को आगे बढ़ाते हुए, हम आज अध्याय तीन का अध्ययन करने जा रहे हैं। श्रीमद्भगवद्गीता की पृष्ठभूमि हम सभी जानते हैं। कौरवों और पाण्डवों के बीच में महाभारत का महायुद्ध हुआ। युद्ध के प्रारम्भ में ही अर्जुन अपने सगे सम्बन्धियों और स्वजनों को देखकर हतोत्साहित हो गये। मैं युद्ध नहीं करूँगा, यह कहकर अर्जुन रथ के पीछे जाकर बैठ जाते हैं। मैं यह युद्ध क्यों नहीं करना चाहता, इसके सम्बन्ध में उन्होंने बहुत सफाई प्रस्तुत की। श्रीभगवान् ने कुछ नहीं कहा, चुपचाप सुनते रहे पर जब अर्जुन ने कहा-

**यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे,**
**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।2.7।।**

मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा, मैं आपकी शरण में हूँ, आप मुझे उपदेश दीजिए, मैं आपका शिष्य हूँ। मेरे लिए जो कल्याणकारी है, वह आप मुझे बताइए। ऐसा जब अर्जुन ने कहा तब श्रीभगवान् ने सुन्दर उपदेश देना प्रारम्भ किया।

उन्हें बताया कि मूल तत्त्व, मूल ज्ञान क्या है? वह हमें जानना चाहिए। किसके साथ हमें एकरूप होना चाहिए? श्रीभगवान् ने आत्म तत्त्व के बारे में बताया। इसका ज्ञान बताया, उसे कैसे जानना और कर्म का क्या महत्त्व है। उसके पश्चात स्थितप्रज्ञ के लक्षण भी बताए। जिसकी प्रज्ञा बुद्धि स्थिर होकर शुद्ध हो गई है, ऐसे ज्ञानी महापुरुष के लक्षण प्रभु ने बताए। यह सुनने के पश्चात अर्जुन के मन में प्रश्न उठे, शङ्का हुई कि एक और तो श्रीभगवान् ज्ञान की महिमा बताते हैं, ज्ञान के माध्यम से परमात्मा की प्राप्ति बता रहे हैं और दूसरी ओर कर्म की भी प्रशंसा करते हैं, लेकिन उसमें भी ज्ञान का महत्त्व अधिक बता रहे हैं। अर्जुन को

लगा मैं भी ज्ञान प्राप्त करके अपना जीवन आनन्दमय कर लूँ।

अर्जुन भी यही चाहते हैं, वे सोचते हैं कि फिर श्रीभगवान् बार-बार क्यों कहते हैं कि युद्ध के लिए तैयार हो जाओ, अपना कर्त्तव्य करने के लिए तैयार हो जाओ। दोनों प्रकार की बातें श्रीभगवान् कर रहे हैं, इसका स्पष्ट अर्थ क्या है? ज्ञान और कर्म में क्या श्रेष्ठ है? यह मैं समझ लूँ इसलिए अर्जुन श्रीभगवान् से प्रश्न करते हैं। इसी के साथ तीसरा अध्याय प्रारम्भ होता है।

**3.1**

**अर्जुन उवाच**
**ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते, मता बुद्धिर्जनार्दन।**
**तत्किं(ङ्) कर्मणि घोरे मां(न्), नियोजयसि केशव॥3.1॥**

अर्जुन बोले - हे जनार्दन! अगर आप कर्म से बुद्धि (ज्ञान) को श्रेष्ठ मानते हैं, तो फिर हे केशव! मुझे घोर कर्म में क्यों लगाते हैं ?

**3.2**

**व्यामिश्रेणेव वाक्येन, बुद्धिं(म्) मोहयसीव मे।**
**तदेकं(वँ) वद निश्चित्य, येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥3.2॥**

(आप अपने) मिले हुए से वचनों से मेरी बुद्धि को मोहित-सी हो रही है। (अतः आप) निश्चय करके उस एक बात को कहिये, जिससे मैं कल्याण को प्राप्त हो जाऊँ।

**विवेचन**:- अर्जुन के द्वारा श्रीभगवान् को सम्बोधन किया जाता है, हे केशव! हे जनार्दन! चेत शब्द का अर्थ है यदि, कर्म से बुद्धि, ज्ञान श्रेष्ठ है ऐसा आपका मत है। अर्जुन के मन में यह विचार क्यों आया?

इसका उत्तर हमें अध्याय दो के इस श्लोक में मिलता है

**दूरेण ह्यवरं कर्म, बुद्धियोगाद्धनञ्जय।**

ज्ञान मार्ग की तुलना में कर्म मार्ग नीचे स्तर का है।

**बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।।**

फल प्राप्ति के लिए कर्म करने वाले दीन हैं। ज्ञान से तुम मेरी प्राप्ति का मार्ग देखो, इसलिए अर्जुन को विचार आया कि श्रीभगवान् बुद्धि को, ज्ञान को ही श्रेष्ठ बता रहे हैं। अर्जुन के मन में विचार आता है कि जब ज्ञानमार्ग श्रेष्ठ है तो श्रीभगवान् मुझे युद्ध करने के लिए अग्रसर क्यों कर रहे हैं। अर्जुन को यह बात समझ में तो आ गई कि श्रीभगवान् मेरा कल्याण चाहते हैं। यह घोर कर्म करने से मुझे ज्ञान की प्राप्ति कैसे होगी? मुझे इस मार्ग पर चलने के लिए क्यों कह रहे हैं? ज्ञानेश्वर जी महाराज कहते हैं-

**देवा तुवांचि ऐसें बोलावें । तरी आम्हीं नेणतीं काय करावें ।**
**आता संपले म्हणे पां आघवें । विवेकाचे ॥ ६ ॥**

आप ही ऐसी बातें बोलेंगे तो हमें कैसे समझ में आएगा। आप दो-दो बातें बता रहे हैं कि कर्मयोग से भी कल्याण हो सकता है, ज्ञानमार्ग से भी यह प्राप्त हो सकता है। आपकी भाषा मिश्रित है। आप मेरी बुद्धि को और अधिक भ्रमित कर रहे हैं। अर्जुन

कहते हैं, आप मुझे एक निश्चित बात बताइए। अर्जुन के मन में यह इच्छा है कि श्रीभगवान् कह दें कि युद्ध छोड़ दो तो मैं वन में जाकर तपस्या करूँ और ज्ञान की प्राप्ति करूँ। अर्जुन का बहुत बड़ा उपकार है हम सब पर, क्योंकि अर्जुन ने सभी प्रकार के प्रश्न पूछ लिये। जीवन में कुछ भी अनुत्तरित नहीं रहा। ऐसे सारे प्रश्न अर्जुन ने श्रीभगवान् से श्रीमद्भगवद्गीता में पूछ लिये इसलिए मनुष्य का जीवन विषयक कोई भी प्रश्न अनुत्तरित नहीं रहता, ऐसी यह श्रीमद्भगवद्गीता है। बहुत महत्त्वपूर्ण बात अर्जुन पूछते हैं कि जिससे मुझे श्रेय प्राप्त होगा, मेरा कल्याण हो, ऐसी एक बात बताइए।

**दो बातें होती हैं एक श्रेय और एक प्रेय।**

प्रेय तो सभी को पता होता है मुझे क्या पसन्द है। मुझे क्या प्रिय है। वह मैं जानता हूँ, लेकिन क्या करने से मेरा कल्याण होगा यह हमें गुरु से जानना पड़ता है। हमारा कल्याण किसमें है? यह बात हमें गुरु ही बता सकते हैं।

उदाहरण के लिए जब हम बीमार होते हैं तो वैद्य के पास जाते हैं। वह दवाई कड़वी है हमें पता होता है लेकिन हमारे स्वास्थ्य के लिए अच्छी है, इसलिए हम उसे लेते हैं। हम यह जानते हैं कि यह लेने से हमारा कल्याण होगा, हमारा रोग दूर हो जाएगा। कितनी महत्त्वपूर्ण बात है, यदि हमारे जीवन में प्रसङ्ग आए कि अचानक श्रीभगवान् हमारे समक्ष प्रकट होते हैं तो हमें क्या माँगना चाहिए? हम अपनी प्रिय वस्तु माँगते हैं। तो वह हमें मिल जाएगी। हमें क्या माँगना चाहिए हमें समझ नहीं आता। हमें ईश्वर से वह माँगना चाहिए जिससे हमारा कल्याण हो। अर्जुन कहते हैं जिस बात में मेरा कल्याण हो वह बात मुझे बताइए।

**कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।**
**यच्छ्रेयः स्यान्निश्चतं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।**
**2·07**

दूसरे अध्याय में भी अर्जुन ने श्रीभगवान से यही माँगा है कि जो मेरे लिए कल्याणकारी है, वह मुझे बताएँ। इस अध्याय में भी यही बात कह रहे हैं,

ज्ञानेश्वर जी महाराज कहते हैं-

**देवा तुझ समान लाभता गुरु, मी इच्छा पूर्ति कां न करू।**

नैष्कर्म्य का अर्थ सब करते हुए भी कुछ नहीं करना और कुछ न करते हुए भी सब कुछ करना है।

**3.3**

**श्रीभगवानुवाच**
**लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा, पुरा प्रोक्ता मयानघ।**
**ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां(ङ्), कर्मयोगेन योगिनाम्॥3.3॥**

श्रीभगवान् बोले - हे निष्पाप अर्जुन! इस मनुष्यलोक में दो प्रकार से होने वाली निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गयी है। (उनमें) ज्ञानियों की (निष्ठा) ज्ञानयोग से और योगियों की (निष्ठा) कर्मयोग से (होती है)।

**विवेचन**- श्रीभगवान् कहते हैं कि इस इह लोक में दो प्रकार के मार्ग मैंने पहले भी बताए हैं। दोनों प्रकार के मार्ग से मनुष्य का कल्याण हो सकता है। श्रीभगवान् बहुत सुन्दर शब्द से अर्जुन को सम्बोधित करते हैं-

**“हे अनघ!"**

यानी निष्पाप।

अर्जुन श्रीभगवान् से निष्पाप मन से प्रश्न पूछ रहे हैं कि आपने दो कल्याणकारी मार्ग बताए हैं, परन्तु मेरे लिए कल्याण का मार्ग कौन सा है?

श्रीभगवान् अपनी बात को दोहराते हुए कहते हैं कि दो प्रकार के मार्ग हैं। ज्ञान योगियों को संन्यास मार्ग पर जाने के लिए ज्ञान का मार्ग है और जो कर्मयोग के मार्ग से जाना चाहते हैं उनके लिए कर्मयोग का मार्ग है।

उदाहरण के लिए नागपुर से मुम्बई जाने के लिए हवाई जहाज़, रेलगाड़ी, बस और पैदल जाने के चार साधन हैं। किस साधन से जाना है? यह मेरी योग्यता पर निर्भर करता है। यदि मेरे पास ज़्यादा पैसा है और जल्दी जाना है तो हवाई जहाज़ से जा सकता हूँ। यदि इतने पैसे नहीं है तो रेलगाड़ी से जा सकता हूँ। थोड़ा समय ज्यादा लगेगा, पर रेल मुम्बई  पहुँचा देगी। हवाई मार्ग और रेलवे मार्ग दोनों मुम्बई पहुँचाते हैं, लेकिन जिसकी जैसी योग्यता होगी वैसा ही साधन चुनेंगे। बिना पैसे के हवाई यात्रा नहीं कर सकते। उसके लिए पैसे की योग्यता चाहिए।

श्रीभगवान् कहते हैं कि जिसके पास ज्ञानमार्ग से जाने की योग्यता है, वह ज्ञानमार्ग से जाए। जो ज्ञान प्राप्त करके नहीं जा सकते। वे कर्मयोग से जायें।

ज्ञानेश्वर महाराज ने एक सुन्दर उदाहरण देते हुए कहा है-

**पजैसी समान मार्ग दोनं असती, तरी ते अन्ती समान होती।।**
**जैसी सिद्ध साध्य भोजनीं। तृप्ति एकी।।**

दो मार्ग हैं, अन्ततोगत्वा दोनों उसी स्थान पर पहुँचाते हैं।

भूख लगने पर किसी ने स्वादिष्ट भोजन की थाली परोस कर दी, भोजन करके भूख मिटा सकते हैं, लेकिन घर पर कोई भोजन पकाने वाला नहीं है और बहुत भूख लगी है, तो स्वयम् भोजन पकाना पड़ेगा। यदि अपने हाथ से भोजन पका कर खाया या तैयार भोजन खाया, तो भी भूख ही शान्त होगी। या तो मेरी योग्यता तैयार भोजन लेने की हो, अन्यथा मुझे भोजन पकाना पड़ेगा। वह योग्यता प्राप्त करनी होगी। श्रीभगवान् यही बता रहे हैं यदि योग्यता है तो ज्ञानमार्ग से जा सकते हैं, नहीं तो कर्ममार्ग से सभी जा सकते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज ने एक और बहुत सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। यदि किसी का पेड़ पर लटका हुआ आम खाने का मन है तो वह पेड़ पर चढ़ कर, उसे तोड़कर खा सकता है, लेकिन पक्षी उड़कर जायेगा और खा लेगा क्योंकि पक्षी के पास उड़ कर जाने की योग्यता है, लेकिन मनुष्य को एक-एक शाखा चढ़ कर जाना होता है। मार्ग दो हैं लेकिन किस मार्ग से जाना चाहिए, यह मेरी योग्यता पर निर्भर है।

श्रीभगवान् ने दो प्रकार की वृत्तियाँ बताईं हैं- साङ्ख्ययोग या ज्ञानमार्ग। यह विचार प्रधान है और कर्मयोग क्रिया प्रधान है। किसी को बैठ कर कार्य करना नहीं भाता और किसी को पढ़ाई करना अच्छा लगता है। यह मनुष्य का स्वभाव है। स्वभाव के अनुसार व्यक्ति अपना कार्य चुनता है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए एक प्रसङ्ग है।

महाराष्ट्र में एक सन्त गोन्देवलेकर महाराज ने नाम जप का बहुत महत्त्व बताया। उनके आश्रम में बहुत लोग आते और कई-कई घण्टे बैठकर नाम जप करते। भोजन प्रसाद ग्रहण करके फिर नाम जप करते। बहुत सारे भक्त साधना करने उनके आश्रम में आते थे। आश्रम के सामने सड़क निर्माण का कार्य हो रहा था। एक बार मज़दूरों की बात महाराज के कानों में पड़ी कि यहाँ आने वाले लोगों के मज़े हैं। यहाँ आकर बैठ जाते हैं, भोजन करके फिर बैठते हैं, चले जाते हैं और हमारा काम कितना कठिन है। दिन भर धूप में मेहनत करते हैं। महाराज ने यह बात सुनकर उन्हें पास बुलाकर पूछा कि आप लोगों को यह काम करने की रोज कितनी दिहाड़ी मिलती है। पुराने समय की बात है तो उन्होंने कहा दिनभर काम करके चार आने मिलते हैं। महाराज ने उन्हें अगले दिन से आश्रम में आने को कहा कि मैं तुम्हें आठ आने दूँगा। अगले दिन उन्होंने ख़ुश होकर पूछा काम क्या करना होगा? महाराज ने माला फेरनी सिखा कर श्रीराम नाम जप मन ही मन में, बैठकर जपने को कहा। उन्होंने समय अवधि

जानने की जिज्ञासा की तो महाराज ने भोजन के समय तक बैठने को कहा। दस पन्द्रह मिनट के बाद उन्होंने महाराज के पास जाकर कहा कि हमसे एक जगह बैठकर करने वाला काम नहीं होता। हम मेहनत करने वाले लोग हैं। हमें आपके आठ आने नहीं चाहियें। हम अपने चार आने में ही ख़ुश हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार कार्य करता है। धूप में दिन भर पत्थर तोड़ने वाले दो-चार माला फेरकर थक गए।

श्रीभगवान् कहते हैं-

"**मनुष्य को अपनी योग्यता के अनुसार मार्ग चुनना चाहिए"।**

ज्ञान के मार्ग की योग्यता मनुष्य को कैसे मिलेगी?

**3.4**

**न कर्मणामनारम्भान्, नैष्कर्म्यं(म्) पुरुषोऽश्नुते।**
**न च सन्न्यसनादेव, सिद्धिं(म्) समधिगच्छति॥3.4॥**

मनुष्य न तो कर्मों का आरम्भ किये बिना निष्कर्मता का अनुभव करता है और न (कर्मों के) त्याग मात्र से सिद्धि को ही प्राप्त होता है।

**विवेचन**:- नैष्कर्म्य का अर्थ सब करते हुए भी कुछ नहीं करना और कुछ न करते हुए भी सब कुछ करना।

एक कम्पनी के प्रमुख अपने कार्यालय में आए। अपने केबिन में जाकर बैठकर समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। बाकी सब अपने-अपने काम में लग गए। तब तक सभी बैठकर गप्पे लड़ा रहे थे और जैसे ही मैनेजर साहब आए सब अपना-अपना काम करने लग गए। कम्पनी प्रमुख ने कुछ किया या कहा नहीं, वह बस आकर बैठे और बाकी सब अपना-अपना काम करने लग गए। उनके कुछ न करने पर भी सारा काम हो रहा है। यह पद उन्हें ऐसे ही मिल गया क्या? नहीं! इसके पहले उन्होंने पढ़ाई की, प्रतिस्पर्धा का सामना किया, चयन प्रक्रिया के बाद उन्हें यह पद प्राप्त हुआ। यदि वे अच्छे मैनेजर हैं तो वह कहते हैं मैंने कुछ नहीं किया, मेरे साथ जो सहकर्मी हैं, यह उन्हीं की कारण हुआ है। अच्छा कार्य करते हैं इसलिए कम्पनी अच्छे से चलती है।

**निष्कर्म का सबसे अच्छा उदाहरण है हमारे सूर्य भगवान्।**

हमारा सारा कार्य कामकाज सूर्यनारायण भगवान् के द्वारा ही चलता है। हम उनकी प्रार्थना करते हुए उन्हें आभार व्यक्त करते हैं तो वे कहते हैं-
मैं कुछ नहीं करता। मैं न तो उदय होता हूँ और न ही अस्त होता हूँ! मैं तो बैठा रहता हूँ।

**पृथ्वी के घूमने के कारण हमें ऐसा प्रतीत होता है।**

सिद्धि प्राप्त करने के लिए कर्म करना ही पड़ेगा। संन्यास ले लिया, सारे कर्मों का त्याग कर दिया तो सिद्धि प्राप्त हो जाएगी, ऐसी बात नहीं है। सिद्धि प्राप्त करने के लिए पहले बहुत मेहनत करनी पड़ती है।

एक व्यक्ति ने यह निश्चित किया कि मैं संन्यास ले लेता हूँ तो सभी चिन्ताओं से मुक्त हो जाऊँगा। वे अभियन्ता (इञ्जीनियर) थे। वे गुरुजी के आश्रम में चले गए। गुरुजी से कहा कि मैं संन्यास लेने आया हूँ, आप मुझे दीक्षा दीजिए। गुरुजी ने कहा अच्छा हुआ तुम आ गए, यहाँ आश्रम में निर्माण का कार्य चल रहा है। मैं सोच भी रहा था कि कौन इञ्जीनियर मेरी मदद कर पाएगा? अच्छा हुआ तुम आ गए। उस व्यक्ति ने कहा, मैं तो यह सब छोड़ कर आया हूँ। मुझे सब कार्य छोड़ना है इसलिए तो मैं आपके पास आया हूँ। निष्काम सिद्धि प्राप्त करनी है तो उसके लिए पहले कर्म करना होगा। संन्यास लेने से मुक्त हो जाते हैं ऐसी बात नहीं है। काम्य कर्मों का त्याग करने से मनुष्य मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

**3.5**

**न हि कश्चित्क्षणमपि, जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।**
**कार्यते ह्यवशः(ख्) कर्म, सर्वः(फ्) प्रकृतिजैर्गुणैः॥3.5॥**

कोई भी (मनुष्य) किसी भी अवस्था में क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता; क्योंकि (प्रकृति के) परवश हुए सब प्राणियों से प्रकृति जन्य गुण कर्म करवा लेते हैं।

**विवेचन**:- किसी भी समय, कोई भी व्यक्ति बिना कार्य किये नहीं रह सकता। एक क्षण भी बिना कर्म किए नहीं रह सकते। हमें निरन्तर काम करते रहना ही पड़ेगा। हम प्रकृति के बन्धन में हैं, हम इस शरीर में रहते हैं। शरीर प्रकृति से बना है और शरीर को चलाने के लिए हमें कर्म करना ही पड़ेगा। कोई कहे कि मैं तो कुछ नहीं कर रहा, बैठा हूँ, पर भूख लगती है तो भोजन तो करते हैं, प्यास लगती है तो पानी तो पीते हैं। श्वास-प्रश्वास करते ही हैं। त्रिगुणात्मिका प्रकृति के तीन गुणों रज, सत्त्व और तम, के कारण हम सब बन्धन में हैं। गुण का एक और अर्थ होता है रस्सी, जैसे रस्सी बाँध कर रखती है ठीक उसी प्रकार ये तीनों गुण हमें बाँधे रखते हैं। यदि किसी व्यक्ति के हाथ पैर बाँधकर उसे रथ में डाल दिया जाए तो जहाँ-जहाँ रथ जाएगा उसे जाना ही पड़ेगा। इस प्रकार इन तीनों गुणो के बन्धन के कारण हमें यह शरीर प्राप्त हुआ है और हम इस शरीर से बँधे हुए हैं।

यदि हमें ऐसा लगे कि यह कार्य करने का मुझे अवसर मिला है तो हमें बन्धन नहीं लगता। जहाँ यह स्थिति आती है कि हमें यह तो करना ही पड़ेगा तो वहाँ बन्धन निर्माण होता है।

प्रकृति के गुणों के कारण हमें सतत कार्य करते रहना पड़ेगा। हम कुछ न भी करें तो भी हमें कान से सुनाई तो देता ही रहेगा, आँखें देखेंगी,  हम शरीर में रहते हैं, हम शरीर नहीं है। यह मेरा शरीर है, मेरे कान, मेरी आँख, मेरी नाक, यह सोच ही गलत है।

**काय कानाने ऐकणे सोडले, की डोव्यांनी पाहाणे संपले।**
**किंवा नासिका रन्ध्र ते बुझले ना कळे परिमळ।।**

श्रीभगवान ने यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात बताई। यहाँ से कर्मयोग प्रारम्भ होता है।

**3.6**

**कर्मेन्द्रियाणि संयम्य, य आस्ते मनसा स्मरन्।**
**इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा, मिथ्याचारः(स्) स उच्यते॥3.6॥**

जो कर्मेन्द्रियों (सम्पूर्ण इन्द्रियों) को (हठपूर्वक) रोककर मन से इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करते हुए बैठता है, वह मूढ़ बुद्धि वाला मनुष्य मिथ्याचारी (मिथ्या आचरण करने वाला) कहा जाता है।

**विवेचन**- श्रीभगवान् कहते हैं, हाथ-पैर हमारी कर्मेन्द्रिय हैं। आँख-कान हमारी ज्ञानेन्द्रिय हैं। इन इन्द्रियों को हम रोक कर, संयमित करते हुए मन से उस कार्य का चिन्तन करते हैं।

उदाहरण से समझते हैं-

हमने निश्चय कर लिया कि आज मैं भोजन नहीं करूँगा। हाथ को रोका कि भोजन के पास जाना नहीं है, जिह्वा को रोका कि आज तुम्हें भोजन नहीं मिलेगा, अर्थात् हम कर्मेन्द्रियों को संयमित कर रहे हैं। उसके साथ ही हम यह भी सोच रहे हैं कि आज तो निश्चय किया है कि भोजन नहीं करना है। अपने पसन्द के कई सारे व्यञ्जन बने हुए हैं तो मन से उस विषय का चिन्तन कर रहे हैं। विषय को बलपूर्वक अपने से दूर तो रखा है परन्तु मन से, इन्द्रियों से उसी विषय के बारे में सोच रहे हैं।

यहाँ श्रीभगवान् कह रहे हैं कि वह तो मिथ्याचारी है, ढोंगी है। उसका स्वयं को रोकना, संयमित करना सही नहीं है। बलपूर्वक

इन्द्रियों को तो रोक रहा है पर मन से उसी के विषय में सोच रहा है। यह सही संयम नहीं है, अभी भी वह गलती कर रहा है।

अभी देखना है कि सच्चा कौन है? ढोंगी कौन है? श्रीभगवान् ने बताया कि ऐसे नहीं करना चाहिए। श्रीभगवान् ने बताया कि बलपूर्वक इन्द्रियों को रोक कर विषय के बारे में सोचना सही नहीं है।

यह कैसे किया जाता है? श्रीभगवान् आगे के श्लोक में बताते हैं।

**3.7**

**यस्त्विन्द्रियाणि मनसा, नियम्यारभतेऽर्जुन।**
**कर्मेन्द्रियैः(ख्) कर्मयोगम्, असक्तः(स्) स विशिष्यते॥3.7॥**

परन्तु हे अर्जुन! जो (मनुष्य) मन से इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके आसक्ति रहित होकर (निष्काम भाव से) कर्मेंद्रियों (समस्त इन्द्रियों) के द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।

**विवेचन**- श्रीभगवान् कहते हैं, मन के द्वारा ही इन्द्रियों को नियन्त्रित करते हैं। अपने मन से इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखा है। मन इन्द्रियों को कहता है कि विषय की ओर नहीं जाना है। इन्द्रियाँ मन के कहने पर ऐसा कर रही हैं, बलपूर्वक नहीं। यहाँ मन के द्वारा नियन्त्रण चल रहा है और कर्म चल रहा है। मुझे यह करना आवश्यक है, इसलिए मैं कर रहा हूं, इसमें मेरा मन नहीं लगा हुआ है। मन से आसक्त होकर नहीं करना है, अर्थात् मन से उसमें चिपक कर नहीं करना है। मन के द्वारा उसका चिन्तन नहीं करना है। श्रीभगवान् कहते हैं, यह विशेष है।

एक प्रसङ्ग को देखते हैं।

गुरु और शिष्य दोनों ही संन्यासी हैं। एक बार वे दोनों एक वन से जा रहे थे। आगे चलते हुए शिष्य रास्ते को साफ करते हुए चल रहा था और उसके पीछे थे गुरुजी। चलते-चलते उनके रास्ते में एक नदी आ गई। वहाँ नदी के किनारे एक युवती खड़ी थी। शिष्य जब युवती के निकट जाता है तो युवती कहती है, महाराज मुझे उस पार जाना है। पानी अधिक गहरा नहीं है, केवल घुटने के स्तर तक ही है, पर बहाव तेज होने के कारण मुझे भय लग रहा है। आप मेरा हाथ पकड़ कर नदी के उस पार पहुँचा दीजिए।

शिष्य ने कहा-
माते! मैं तो संन्यासी हूँ। मैं तुम्हारा हाथ पकड़ कर नदिया के उस पर नहीं ले जा सकता। यह सुनकर युवती रोने लगती है। वह कहती है, सन्ध्या हो रही है, घर में मेरा बालक दूध के लिए रो रहा होगा। मेरा घर पहुँचना आवश्यक है। आप कृपया मुझे उस पार छोड़ दीजिए।

इतने में गुरुजी वहाँ पहुँच जाते हैं और पूछते हैं- क्या बात है?

युवती बताती है कि मुझे उस पार जाना है और ये महाराज मुझे उस पार नहीं ले जाना चाहते। सुनकर गुरुजी कहने लगते हैं कि चलो मैं तुम्हें उस पार छोड़ देता हूँ। गुरुजी ने युवती का हाथ पकड़ कर, उसे नदिया के पार छोड़ दिया। आगे चलकर शिष्य और गुरु दोनों अपने आश्रम में चले गए। दूसरे दिन शिष्य ने गुरु जी से पूछा कि हम दोनों संन्यासी हैं। आपने आरम्भ में मुझे दीक्षा देकर बताया था कि हमें स्त्रियों को स्पर्श नहीं करना है। यही संन्यास का नियम भी है। ऐसे में आप उस युवती का हाथ पकड़ कर नदिया के पार ले गए। गुरुजी अपने शिष्य को कहते हैं कि मैंने तो उसे नदिया के पार छोड़ दिया है, परन्तु तुमने तो अभी भी उसको पकड़ रखा है। तुम अभी भी उसका चिन्तन कर रहे हो, उसे मन से पकड़े हुए हो। मैं उसे नदिया के पार छोड़कर भूल भी गया, परन्तु तुम अभी भी उसी का चिन्तन कर रहे हो। इन्द्रियों को बल पूर्वक रोककर, उसी के विषय में चिन्तन करना गलत है। उससे अच्छा है, इन्द्रियों का उपयोग करते हुए जो करना था किया, फिर भूल जाना और अपने कार्य में लग जाना। मन को संयमित करना है और कर्मेन्द्रियों से कार्य करके उसे भूल जाना है। सहज भाव से उस कार्य को किया, यह

विशेष है।

**ज्याचे निश्चल अन्तःकरण तो परमात्म स्वरूपी तल्लीन**
**बाह्यात्कारी लोका समान वागतों जो।।**

श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, जिसका अन्त:करण निश्चल है। बाहरी रूप से लोग जैसे व्यवहार करते हैं, वह भी वैसा ही कर रहा है।

**तो इन्द्रियां आज्ञा न करी। विषयाचे भय न धरी।**
**प्राप्त कर्म नाव्हेरी। उचित जें जें।**

यह उचित कर्म है, उस समय के लिए आपद्धर्म है। वह संन्यासी होते हुए भी उस युवती को नदी किनारे पहुँचा देता है। एक आपदा आई हुई है, आपदा धर्म सोचकर कार्य कर दिया और भूल गए, यह विशेष है, इसलिए श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं, कि बिना कर्म किए रह तो नहीं सकते, तो कैसे कर्म करना है? कौन से कर्म करना है? वह श्रीभगवान् अगले श्लोक में बताते हैं।

**3.8**

**नियतं(ङ्) कुरु कर्म त्वं(ङ्), कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।**
**शरीरयात्रापि च ते, न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥3.8॥**

तू शास्त्र विधि से नियत किये हुए कर्तव्य कर्म कर; क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर-निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

**विवेचन** - श्रीभगवान् कहते हैं, तुम अपना नियत कर्म करो। अब नियत कर्म क्या होता है? उसे समझते हैं। एक होता है विहित कर्म और दूसरा है नियत कर्म। मनुष्य के लिए हमारे यहाँ चार वर्ण और चार आश्रम बताए गए हैं। इन वर्ण और आश्रम के अनुसार किस कर्म में हमारा हित नियत है वह बताया गया है।

एक व्यापारी स्वभाव के मनुष्य के लिए व्यापार करना सही बताया गया है। यह उसका विहित कर्म है। ब्रह्मचर्य आश्रम में एक छात्र के लिए पढ़ाई करना उसका विहित कर्म है। एक सैनिक को देश के लिए, देश की रक्षा के लिए कठिन परिस्थितियों में सेवा देना उसका विहित कर्म है। इस तरह प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसके स्वभाव के अनुसार विहित कर्म हैं।

इन विहित कर्मों में ही नियत कर्म होते हैं।

छात्र के लिए पढ़ाई करना उसका विहित कर्म है। आगे वह विज्ञान, तकनीकी, वाणिज्य या फिर कला क्षेत्र को चुनता है। अब उसकी पढ़ाई का क्षेत्र उसका नियत कर्म बनता है। श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं, तुम एक योद्धा हो और युद्ध होने जा रहा है तो युद्ध करना तुम्हारा नियत कर्म है।

कुछ किए बिना रहने से कुछ कर्म करते रहना श्रेष्ठ है। यदि कर्म ही नहीं करेंगे तो शरीर को आगे चलाने के लिए जो कर्म करने हैं, वे भी नहीं होंगे। शरीर को आगे चलाने के लिए कुछ कर्म आवश्यक हैं, जैसे भोजन करना है। भोजन करने के लिए कुछ कमाना है और कुछ कमाने के लिए कर्म तो करना ही पड़ेगा। नियत कर्म करना ही है, नियत कर्म किए बिना शरीर नहीं चल सकता।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने कहा है-

**म्हणून जे जे कर्म उचित, आणि अवसरें करुनि प्राप्त।**

जो उचित है, योग्य है और समयानुसार मिला हुआ है उस कर्म को करना ही पड़ेगा।

**हे होउन हेतु रहित आज रात|**

इससे मुझे क्या मिलेगा? क्या यह मेरा कर्त्तव्य है? क्या मुझे यह करना चाहिए? जब कर्त्तव्य सामने आता है, उसे कैसे चुनना है? यही एक प्रश्न हमारे सामने रहना चाहिए। इसको करने से मेरा क्या हित होगा? यह नहीं सोचना है।

**क्या मेरे लिए यह कर्त्तव्य है? क्या मेरे लिए यह उचित है या फिर क्या मेरे लिए यह योग्य है? केवल यह सोचना है। यदि ऐसा है तो उसे अवश्य करना है।**

श्रीभगवान् भी कहते हैं कि जो तुम्हारा नियत कर्म है बस उसे करना है। ब्रह्मचारी के लिए, गृहस्थ के लिए, वानप्रस्थ के लिए, क्षत्रिय के लिए या फिर व्यापारी के लिए, जिस किसी का भी कर्त्तव्य है, उसे वह करना है। कर्म करना आवश्यक है यह भी बताया गया है। श्रीभगवान् ने यह बताया कि जो नियत कर्म है उसे करना है, यह कर्मयोग का दूसरा नियम है। कर्म तो करना है।

इस कर्म के बन्धन से कैसे मुक्त होना है श्रीभगवान् आगे के श्लोक में बताते हैं।

**3.9**

**यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र, लोकोऽयं(ङ्) कर्मबन्धनः।**
**तदर्थं(ङ्) कर्म कौन्तेय, मुक्तसङ्गः(स्) समाचर॥3.9॥**

यज्ञ (कर्तव्य पालन) के लिये किये जाने वाले कर्मों से अन्यत्र (अपने लिये किये जाने वाले) कर्मों में लगा हुआ यह मनुष्य समुदाय कर्मों से बँधता है, (इसलिये) हे कुन्तीनन्दन ! तू आसक्ति-रहित होकर उस यज्ञ के लिये (ही) कर्तव्य कर्म कर।

**विवेचन**- यज्ञ, जी हाँ, भगवद्गीता का और श्रीभगवान् का सबसे प्रमुख मन्त्र है यज्ञ।

भगवद्गीता के सन्दर्भ में यज्ञ का क्या अर्थ है? उसे जान लेना भी आवश्यक है। यज्ञ के नाम से सामान्यतः हमारे सामने एक चित्र उभर कर आता है। एक हवन करने का कुण्ड है, उसके आसपास भक्त बैठे हैं और उसमें आहुति देते जा रहे हैं। यह प्रतीकात्मक या क्रियात्मक यज्ञ है।

भगवद्गीता में यज्ञ का अर्थ है हमारा कर्त्तव्य कर्म। कर्म को कर्त्तव्य के भाव से करना, इससे मुझे क्या मिलेगा? यह सोचना नहीं है। बस, यह मेरा कर्त्तव्य है और मुझे इसे करना है, यही सोच मन में होनी चाहिए। यह सोचकर जब मनुष्य यज्ञकर्म करता है, तो वह यज्ञार्थ कर्म बन जाता है।

श्रीज्ञानेश्वर महाराज तो एक वाक्य में इसका अर्थ स्पष्ट कर देते हैं।

**बापा जे स्वधर्माचरण तोच जाणावा नित्य यज्ञ|**

स्वधर्माचरण, स्वधर्म अर्थात् क्या? भगवद्गीता हमें क्या बताती है? भगवद्गीता धर्म ग्रन्थ है, धर्म का क्या अर्थ है? क्या यह हिन्दूओं का धर्म ग्रन्थ है, क्या यह सनातनियों का धर्म ग्रन्थ है? इस धर्म शब्द का अर्थ है कर्त्तव्य, इस अर्थ को हम अच्छे से जानते हैं, प्रयोग भी करते हैं, लेकिन कभी-कभी इसे ध्यान में नहीं रखते।

मातृधर्म हम अच्छे से जानते हैं। पितृधर्म, पुत्र धर्म, राजधर्म ये सभी हम जानते हैं। राजा का कर्त्तव्य, पिता का कर्त्तव्य, पुत्र का कर्त्तव्य ये सभी कर्त्तव्य के रूप में हमारे सामने रहते हैं। स्वधर्म अर्थात् मेरा स्वयं का कर्त्तव्य। अपना कर्त्तव्य करना।

श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं यह तो नित्य यज्ञ है।

यदि हम स्वयं का कर्त्तव्य निरन्तर रूप से कर रहे हैं तो वह हमारे लिए यज्ञ है। यज्ञ के भाव से कर्त्तव्य कर्म करेंगे तो वह यज्ञ हो गया।
सामान्य यज्ञ में हम कुछ अग्नि को अर्पण करते हैं अर्थात् श्रीभगवान् को अर्पण करते हैं, उसी तरह से हमें अपना कर्त्तव्य करना है और उसे अर्पण करना है। मुझ पर सौंपा गया यह श्रीभगवान् का दायित्व है। मनुष्य देह प्राप्ति के कारण मुझे यह दायित्व मिला और मैंने अपना कर्त्तव्य करते हुए उसे श्रीभगवान् को अर्पण कर दिया। इस तरह से यह यज्ञ हो जाता है।

यज्ञकर्म न करते हुए जो कर्म किया जाता है, वह बन्धन बन जाता है। यह तो कर्म का बन्धन है, हमें इस कर्म बन्धन से छूटना है। अपने गुणों के बन्धन से छूटना है। यदि मैं कुछ करूँगा तो मुझे वह मिलेगा, ऐसी सोच रहती है तो हम बन्धन में बँध जाते हैं। ऐसी सोच जब बन जाती है, तो वैसे ही हमें भोगना पड़ेगा, हमें उसका वैसा ही फल मिलेगा। अच्छा हो या बुरा हो, उसे भोगने के लिए हमें पुनर्जन्म लेना पड़ेगा। श्रीभगवान् कहते हैं यदि कर्त्तव्य के रूप से यज्ञ किया और उसे अर्पण किया तो कोई बन्धन नहीं रह जाता। यह बन्धन से मुक्त कराता है। सभी कर्म हम इस तरह से नहीं कर सकते, तो प्रतिदिन हमें एक कर्म तो कर्त्तव्य भाव से करना ही होगा। तब यह एक यज्ञ हो जाएगा।

जन्म से लेकर अब तक हमने जितनी भी जीवन यात्रा की है, उसमें हमें बहुत कुछ बिना माँगे ही मिल गया होता है। हमारे माता-पिता ने हमें बड़ा किया, खिलाया-पिलाया, फल खाते हैं तो किसी ने तो उन पेड़ों को लगाया होगा। पाठशाला जाते हैं, तो पाठशाला के भवन को किसी ने तो बनाया होगा। ये कई सारी बातें हैं, जो हमें बिना माँगे ही मिल जाती हैं। प्रकृति से भी हमें बहुत कुछ मिलता है। वर्षा होती है तो जल मिल जाता है, पेड़ो से हवा मिलती है, पर इसके लिए हम कुछ नहीं करते।

**क्या हवा हमने बनाई,**
**क्या बुना हमने गगन?**
**क्या हमारी वजह से बह रहा सुरभित पवन**
**गर नहीं तो क्यों हमारे मुताबिक  सब चलें**
**क्यों हमारी चाह से सूरज उगे सूरज ढले।**

हमारी इच्छा के अनुसार ही सब कुछ हो रहा है ऐसा नहीं है। कर्त्तव्य के रूप में जो कर्म आए, वे सभी अच्छे लगे यह भी आवश्यक नहीं है। अपने कर्त्तव्य करने हैं क्योंकि इतनी सारी बातें हमें अनायास ही मिल रही हैं।

**3.10**

**सहयज्ञाः(फ्) प्रजाः(स्) सृष्ट्वा, पुरोवाच प्रजापतिः।**
**अनेन प्रसविष्यध्वम्, एष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥3.10॥**

प्रजापति ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदिकाल में कर्तव्य कर्मों के विधान सहित प्रजा (मनुष्य आदि) की रचना करके (उनसे प्रधानतया मनुष्यों से) कहा कि (तुम लोग) इस कर्तव्य के द्वारा सबकी वृद्धि करो (और) यह (कर्तव्य कर्मरूप यज्ञ) तुम लोगों को कर्तव्य-पालन की आवश्यक सामग्री प्रदान करने वाला हो।

**विवेचन**- श्रीभगवान् कहते हैं, प्रजापति ब्रह्मा जी ने इस सृष्टि, प्रजा, संसार का जब निर्माण किया उसके साथ ही यज्ञ का भी निर्माण किया। प्रत्येक जीव के साथ उसका कर्त्तव्य भी जन्म लेता है। यह निश्चित हो जाता है कि जीव को इस धरा पर जन्म लेने के बाद क्या कुछ करना है। उस जीव का और हमारा जन्म कुछ विशेष कार्य करने के लिए हुआ है और हमें उसे खोजना है। प्रजापति ब्रह्मा जी ने कहा है कि हमारे जीवन का उत्कर्ष हमें उस कार्य को करते हुए करना है। हमें मनुष्य योनि प्राप्ति के बाद

हमारे कर्त्तव्य और यज्ञ जो करने हैं उन्हें पूर्ण करना है। ये सब कुछ हमारे लिए यज्ञ के रूप में नियत कर्म हैं। इन कर्त्तव्यों को करते हुए हमें यश प्राप्त करना है। ये सभी हमारी इष्ट कामनाएँ पूर्ण करने वाले हैं। ब्रह्मा जी ने यह आशीर्वाद भी दिया है कि हम लोग इन यज्ञों के माध्यम से, कर्त्तव्यों के माध्यम से हमारी जो मनोकामनाएँ, हैं वे पूर्ण कर सकते हैं।

प्रत्येक जीव को अपने कर्त्तव्य सही तरह से पूर्ण करना हैं, इसलिए हमारा जन्म हुआ है। इन कर्त्तव्यों को करने पर हमारी उन्नति होगी और हमारा कल्याण होगा। इसके साथ ही श्रीभगवान् का आशीर्वाद भी मिला हुआ है कि हमारी मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी। हमें भौतिक सुखों की प्राप्ति होगी, हमारा अभ्युदय होगा, हमारा कल्याण भी होगा, इसलिए हमें अपना कर्त्तव्य करना है। जो बातें हम बाहर से प्राप्त करती हैं, उन सभी का हम पर ऋण हो जाता है। हमारे माता-पिता, हमारे अन्य पूर्वजों का ऋण हम पर है, इसे पितृ-ऋण कहते हैं। हमें प्रतिदिन सूर्य का प्रकाश मिलता है, शुद्ध वायु मिलती है, वर्षा से हमें जल मिलता है। इन सभी के लिए देवताओं का हम पर ऋण होता है। देवताओं की कृपा से जो मिला वह देव-ऋण है। प्रकाश, वायु, जल ये सभी केवल वस्तुएँ नहीं हैं, ये सभी देवता रूप हैं।

एक ऋण और है, ऋषि-ऋण। हम यह जानते हैं कि वैज्ञानिक समय-समय पर नई खोज करके हमारे जीवन को सरल एवं सुगम बनाते हैं। उनका हम पर ऋषि-ऋण हो जाता है। इन सभी के साथ एक और ऋण भी है समाज-ऋण। किसान अनाज की उपज करता है, जिससे हमारा पेट भरता है। किसान कपास की उपज करता है, जिसे परिष्कृत कर, रङ्ग देकर कोई कपड़ा बनाता हैं। कपड़ों से वस्त्र बनते हैं और इन वस्त्रों को हम धारण करते हैं। यह सब कुछ समाज के अन्य जीवों द्वारा किए गए यज्ञों का फल है और यही है समाज-ऋण। जिस समाज से हमने इतना सब कुछ पाया, उसे भी हमें कुछ लौटाना है और यह हमारा कर्त्तव्य है। समाज का ऋण, देवताओं का ऋण, यह सब कुछ हमें लौटाना है, अपने कर्त्तव्य के द्वारा। ये सभी बड़े ऋण हैं, तो हमें इन्हें कम करने का प्रयास करते रहना है।

**जे तुमचे वर्णाश्रम त्यांचे पाळावे भीत धर्म|**

अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार हमें अपने कर्त्तव्यों का पालन करना है।

**स्वधर्म यज्ञाची साधना ती करा तुम्हीं अनायासे|**
**निष्काम अन्तकरणाने करा।**

इन कार्यों को करने से मुझे क्या मिलेगा? यह हमें नहीं सोचना है। नि:स्वार्थ भाव से हमें यह करना है। यह मेरा कर्त्तव्य है और मुझे करना है, इस भाव से कर्त्तव्य कर्म करने के लिए श्रीभगवान् कहते हैं। यदि हम इतना भी सोचते हैं तो यह वैसे ही है, जैसे हम यज्ञ कर रहे हैं।

पूज्य स्वामीजी की एक पुस्तक है-

**'यज्ञमय जीवन'**

यह पुस्तक हमें अवश्य पढ़नी चाहिए। यज्ञमय जीवन अर्थात् हमारा जीवन ही एक यज्ञ है। कुछ लोग तो अपना सारा जीवन समाज के लिए, देश के लिए अर्पण कर देते हैं। यदि हम उतना कुछ नहीं कर सकते, तो हम गृहस्थ के नाते अपने परिवार के लिए कुछ कर सकते हैं। प्रतिदिन कोई एक कार्य हमें अपना कर्त्तव्य समझकर करना है, जिससे हमें कोई अपेक्षा नहीं रहनी चाहिए। इस तरह के अपेक्षा रहित कर्त्तव्य करने से हम सिद्धि तक पहुँच सकते हैं, ज्ञान भी प्राप्त कर सकते हैं। यह कर्मयोग का सरल मार्ग भी है। बिना कर्म किए हम रह नहीं सकते तो हमें अपना नियत कर्म करना है। क्या मैं कोई एक यज्ञ प्रतिदिन कर सकता हूँ? यह सोचकर हमें अपना कर्त्तव्य करना है। इसके आनन्द को भी हम तुरन्त ही प्राप्त कर सकते हैं। यही आनन्द, सच्चिदानन्द का अंश है। श्रीभगवान् कहाँ रहते हैं? उसका पता भी इसी अध्याय में बताया गया है, जिसे हम अगले श्लोकों में देखते हैं। कर्त्तव्य करने के लिए श्रीभगवान् ने हमें एक अवसर दिया है, यह सोचकर हमें अपने कर्त्तव्य करने हैं।

**प्रश्नोत्तर**

**प्रश्नकर्ता -** रजनीश भैया

**प्रश्न** - कहा जाता है कि ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनों ही श्रीभगवान् की प्राप्ति के मार्ग हैं, क्या इनमें से कोई एक मार्ग अपनाया जा सकता है?**उत्तर** - दोनों मार्ग अलग-अलग हैं परन्तु गन्तव्य एक ही है। हम भगवद्गीता में पढ़ते हैं कि कर्म करते रहना चाहिए लेकिन आचरण में नहीं लाते, इससे चित्त शुद्धि नहीं होती।

**चित्तस्य शुद्धये कर्मण:**

ज्ञान हमारे भीतर ही है। कर्मयोग से ज्ञान प्रकट होता है इसलिए चित्त की शुद्धि कर्मयोग से ही प्रारम्भ करना चाहिए। दोनों मार्ग साथ ही चलते हैं।भगवद्गीता पढ़ना ज्ञान मार्ग का प्रचोदन है, इसलिए इसे पढ़ें पढ़ायें और जीवन में लायें, यह स्वामी जी की त्रिसूत्री अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

यज्ञ भाव से अपने कर्त्तव्य करते रहना चाहिए, यही कर्मयोग है।

**प्रश्नकर्ता** - श्री रजनीश भैया

**प्रश्न** - कर्म करने से तो परमात्मा की प्राप्ति होती है, लेकिन ज्ञान मार्ग से यह कैसे हो सकता है?

**उत्तर** - ज्ञान क्या है? ज्ञान के अलग-अलग स्तर हैं।

**सामान्य ज्ञान -** अपनी इन्द्रियों की सहायता से हम जो अनुभव करते हैं, आँखों से देखते हैं, कानों से सुनते हैं, आदि।

**विज्ञान** - भौतिक रूप से जो जाना उसे विशेष रूप से जानना। जैसे हम एक पँखा देखते हैं यह सामान्य ज्ञान है और उसकी कार्यप्रणाली जानना विज्ञान है।

**आत्मज्ञान -** मैं कौन हूँ? इसका उत्तर पाना। यही सच्चा ज्ञान है। इस शरीर को मेरा कहने वाला यह मैं कौन है? आत्मज्ञान से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है।

समर्थ रामदास जी ने कहा है

**।।पाहणे आपणासी आपण, त्याचें नांव ज्ञान।।**

मैं को समाप्त कर किसी भी कर्म का कर्त्ता मैं नहीं हूँ यह भाव मन में उत्पन्न करना आवश्यक है।

**प्रश्नकर्ता** - श्री रवीन्द्र कौल भैया

**प्रश्न** - इन्द्रियों पर नियन्त्रण कैसे ला सकते हैं? मन में जो बात रह जाती है उसे कैसे निकाल सकते हैं?

**उत्तर** - कर्मयोग के आचरण से क्या होता है? पुरानी घटनाएँ जो हमारे चित्त में जम जाती हैं उन्हें निकालने के लिए चित्त शुद्धि करना चाहिए। तन का मैल निकालने के लिए हम नित्य स्नान करते हैं, उसी तरह मन को निर्मल करने के लिए भगवद्गीता पठन का स्नान प्रतिदिन करना होगा।

हम जो कुछ भी कर सकते हैं उसे बिना फल की आशा के करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति किसी विषय में प्रवीण है तो उसे वह विषय दूसरों को भी पढ़ाना चाहिए। सड़क पर गिरे हुए कचरे को उठाकर उसे कचरे के डिब्बे में फेंकना प्रशंसा के लिए नहीं अपितु सामाजिक ऋण चुकाने के उद्देश्य के लिए किया गया कार्य होना चाहिए। मैंने यह काम किया यह भाव दूर करना आवश्यक है।

**प्रश्नकर्ता** - श्रीनारायण रमण भैया

**प्रश्न** - आजकल जीवन में योगाभ्यास आदि के लिए समय नहीं मिलता, सभी व्यस्त हैं। कर्मयोग श्रीभगवान् की आज्ञा मानकर करते रहना ही उचित होगा क्या?

**उत्तर** - व्यस्तता सबके पीछे लग गई है। जिस कारण व्यस्त हैं, वह भी एक कर्त्तव्य है। अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए काम

तो करना ही होगा जो कि स्वार्थ भाव से किया जाता है। इसके अतिरिक्त एक और काम करना चाहिए जो हमें मानसिक शान्ति दे सके, और हमारा सामाजिक ऋण चुका सके। आजकल तो यह एक प्रथा सी हो गई है कि सप्ताह में पाँच दिन तो कड़ी मेहनत कर ली और सप्ताहान्त में आराम करते हैं, मौज मस्ती करते हैं। यह गलत है।

स्वार्थ इतना बढ़ गया है कि दम्पत्ति सन्तान उत्पत्ति नहीं चाहते, बस पति-पत्नी दोनों कमाते हैं और मौज मस्ती करते हैं इसे Think double income no kids, कहा जाता है। गृहस्थ जीवन में सन्तान उत्पत्ति सामाजिक दायित्व होता है।

कुछ युवकों ने महाराष्ट्र में गाँव दत्तक लिया है और सप्ताहान्त वहाँ जाकर शिक्षा और सफाई अभियान चलाते हैं, इससे उन्हें जीवन में कभी न खत्म होने वाला समाधान मिलता है। संसार में रहते हुए भी विषयों से न बँधकर कर्त्तव्य-कर्म करना चाहिए। जैसे एक जहाज पानी में रहकर भी उसमें तैरता है, वैसे ही भवसागर पार करना है, विषयों में ही रहना है उनमें डूबना नहीं है।

**प्रश्नकर्ता** - श्रीमती जया पै दीदी

**प्रश्न** - एक परिवार में रहते हुए सभी सदस्यों को कुछ काम करना चाहिए, परन्तु यदि कोई एक व्यक्ति काम नहीं करता है तो क्या क्रोध आना स्वाभाविक है? जो व्यक्ति ज्यादा काम करता है वह अपने आपको शोषित समझता है, क्या यह सही है?

**उत्तर** - गीता साधना शिविर के आरम्भ में आदरणीय गुरु स्वामी गोविन्ददेव गिरी जी महाराज ने सभी सदस्यों को एक शपथ दिलाई-

**"हम अपनी सेवा का अवसर दूसरों को न देते हुए भी दूसरों की सेवा में सहायता करने का प्रयास करेंगे"।**

हमें अपना कर्त्तव्य कर्म करना ही है और दूसरों की सहायता भी करनी चाहिए। परिवार में सभी को काम करना चाहिए परन्तु यदि कोई एक व्यक्ति नहीं करता है तो उसे काम सिखाने के लिए वह काम छोड़ दें, उससे गलती हो सकती है पर उस गलती को अनदेखा कर देना चाहिए।

छोटे बच्चे को हम खाना खिलाते हैं,, उसका हाथ पकड़कर चलना सिखाते हैं, लेकिन बड़ा होते-होते वह स्वयं खाना और चलना सीख जाता है। कर्त्तव्य करवाना भी एक कार्य ही है। हम अक्सर यह सोचते हैं कि यदि हम नहीं करेंगे तो यह काम कोई नहीं करेगा, ऐसा बिल्कुल नहीं होता। हर जीव का प्रवास अकेला ही है, कर्त्तव्य भी अकेले का ही होता है। अपना कर्त्तव्य करते हुए श्रीभगवान् को समर्पित करना चाहिए, इससे क्रोध नहीं आएगा।

**प्रश्नकर्ता** - श्रीमती सुजाता आनन्द भिवाड़ी दीदी

**प्रश्न**- भोजन पकाना और अपने परिवार का पालन पोषण करना एक गृहिणी का कर्त्तव्य है, तो क्या इसे श्रीभगवान् को समर्पित किया जा सकता है?

**उत्तर**- गृहिणी अन्नदाता है अन्नपूर्णा है। भोजन पकाना श्रीभगवान् का सौंपा गया कार्य है और श्रीभगवान् के लिए ही कर रहे हैं यदि इस भाव से भोजन पकाया जाता है तो वह अत्यन्त स्वादिष्ट बनता है।

कोई भी काम छोटा नहीं होता, श्रीभगवान् ने इस काम के लिए हमें चुना है ऐसा मान कर काम करने से वह बोझ नहीं लगेगा। लेकिन "मुझे यह काम करना पड़ रहा है" यह सोचेंगे तो काम में आनन्द नहीं आएगा। काम करने में आनन्द आना यही श्रीभगवान् की प्राप्ति है।

**कर्म नहीं बदलना है अपितु दृष्टिकोण बदलना होगा।**

---

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

**https://vivechan.learngeeta.com/feedback/**

**विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!**
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

---

**जय श्री कृष्ण !**
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

---

**हर घर गीता, हर कर गीता!**
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

**https://gift.learngeeta.com/**

---

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

**https://vivechan.learngeeta.com/**

---

**|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||**
**||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||**